जयंत नार्लीकर

न्यूटन का बगीचा और सेब का पेड़

कहते हैं कि न्यूटन अपने घर के बगीचे में सेब के पेड़ के नीचे बैठकर सोच रहे थे कि उनके सिर पर सेब टपक पड़ा। इसे देख उसके दिमाग में कई और विचार आने लगे। सेब नीचे क्यों गिरता है? ऊपर क्यों नहीं? तैरता क्यों नहीं रहता? सवालों का सिलसिला शुरू हो गया। फिर यह विचार उभरा कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण सेब नीचे गिरा। सवालों का सिलसिला यहीं थमा नहीं।

क्या सचमुच यह घटना घटी? पता नहीं! न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नियम और उससे सम्बन्धित गणित लगभग बीस साल बाद अपने *प्रिंसिपिया* ग्रंथ में प्रकाशित किए। अगर यह खोज पेड़ के नीचे बैठकर ही हुई थी तो इतनी महत्वपूर्ण खोज प्रकाशित करने के लिए वे बीस साल तक क्यों रुके? पता नहीं!

सबसे पहले न्यूटन का चरित्र लिखने वाले डेविड बूस्टर ने सेब की घटना के बारे में आशंका जताई है। न्यूटन के बारे में उसके बाद लिखने वालों ने सेब का ज़िक्र तक नहीं किया। लेकिन, स्टयूकली ने उसके बारे में लिखा है – मैं 15 अप्रैल को केनसिंग्टन में न्यूटन के घर खाने पर गया। बड़ी गर्मी थी। इसलिए हमने बगीचे में सेब के पेड़ के नीचे बैठकर चाय पी – सिर्फ न्यूटन और मैंने। बातों के दौरान उसने बताया कि एक बार ऐसे ही सेब के पेड़ के नीचे बैठे हुए उसे गुरुत्वाकर्षण का साक्षात्कार हुआ — सेब गिरने के कारण।

न्यूटन के एक और परिचित कॉण्डयुइट ने कहा कि बगीचे में बैठकर सोचते वक्त उसे सूझा कि गुरुत्वीय बल की पहुँच (जिसके कारण सेब धरती पर गिरा) सीमित नहीं है बल्कि दूर तलक – चाँद तक है।

सेब की कहानी को वोल्टेयर जैसे लेखक ने बहुत लोगों तक पहुँचाया। कहते हैं कि अपनी ज़िन्दगी के आखिरी दशक में न्यूटन ने पचास साल पहले की यह कहानी अपने चार रिश्तेदारों-दोस्तों को बताई। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने पहले कभी हैरी, ग्रेगरी जैसे नज़दीकी दोस्तों को इस घटना के बारे में अँधेरे में क्यों रखा?

सेब के पेड़ के वंशज

वुल्स्थॉप गाँव के घर में सेब का एक पेड़ था जिसके नीचे बैठकर न्यूटन चिन्तन करते थे। वह पेड़ 1814 तक ज़िन्दा रहा। उसका अन्तकाल पास आने का अंदेशा होने के बाद भी टेका लगाकर उसे खड़ा रखने की कोशिश की गई। लेकिन 1820 में आए तूफान से वह गिरा और खत्म हो गया। लोगों ने उस पेड़ की लकड़ी से फर्निचर बनाया। वुल्स्थॉप की लाइब्रेरी में उस लकड़ी से बनी एक कुर्सी रखी गई। कई लोगों ने उसकी लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपने पास रखा।

यह पेड़ जब सेहतमन्द था तभी लॉर्ड ब्राउनलो ने नज़दीक के एक बगीचे में ग्राफ्टिंग करके उसकी एक कलम लगाई थी। उसी से मूल पेड़ का वंश आगे बढ़ता गया। लंदन के नज़दीक रॉयल बॉटेनिकल गार्डन और केंट काउंटी के ईस्ट मॉलिंग रिसर्च स्टेशन पर यह वंश पला और बढ़ा। बाद में केंट के ब्रॉग्डेल हॉर्टिकल्चर ट्रस्ट ने इस वंश के पेड़ बेचना शुरू किया।

इस पेड़ का ऐतिहासिक महत्व जानकर कई संस्थाओं ने इसे अपने आँगन में लगाया। ट्रिनिटी कॉलेज, केम्ब्रिज और

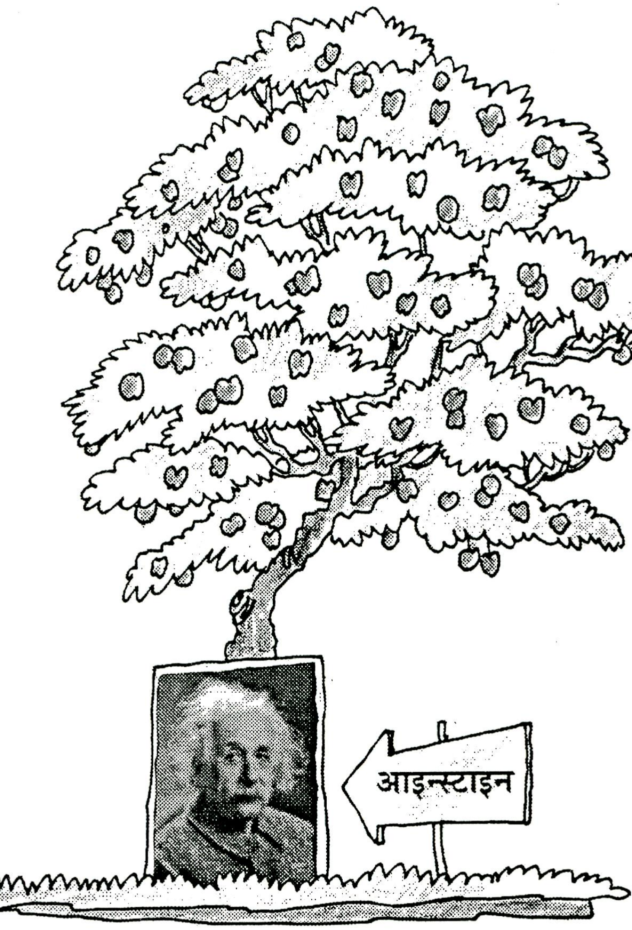

न्यूटन इंस्टीट्यूट केम्ब्रिज में उन्हें देखा जा सकता है। पुणे के आयुका संस्था में भी यह लगाने की कोशिश की।

ऑस्ट्रेलिया से मिला आइडिया

पुणे स्थित आयुका यानी इन्टर युनिवर्सिटी सेन्टर फॉर एस्ट्रॉनॉमी और एस्ट्रॉफिज़िक्स की स्थापना 1988 दिसम्बर में हुई थी। दुनिया भर में इसकी जानकारी पहुँचाने की मेरी कोशिश लगातार रहती है। 1999 में ऑस्ट्रेलिया के सिडनी में अपनी बात रखने से पहले मैंने आयुका पर बना एक स्लाईड शो दिखाया। आयुका के प्रमुख आँगन में चार वैज्ञानिकों के बुत हैं – आर्यभट, गैलीलियो, न्यूटन और आइन्स्टाइन। न्यूटन का बुत निगाहें नीची किए सेब को देख रहा है। यह बुत एक बड़े से बरगद के नीचे है। इसे देख मैंने कहा कि न्यूटन शायद सोच रहा है कि बरगद के पेड़ से सेब कैसे गिरा!

लेकिन जैसे ही मेरी बात खत्म हुई वैज्ञानिक रॉन ईकर्स ने सुझाव दिया कि क्यों न न्यूटन के बुत के पीछे "उस" पेड़ का वंशज लगाया जाए। मुझे यह सुझाव बहुत अच्छा लगा। उस पेड़ का वंशज मिल सकता है – वह भी तीन सदियों के बाद – यह मैंने पहली बार सुना था। ईकर्स ने बताया कि उनकी संस्था में यह पेड़ लगाया है। उसकी कहानी उन्होंने मुझे एक खत से भेजी। उसे नाम दिया – एक बीज की यात्रा!

एक बीज की यात्रा

मोनेश युनिवर्सिटी के डॉ. माथेसन को 1963 में पता चला कि इस तरह से पेड़ पाया जा सकता है। उन्होंने ठान लिया कि वे पेड़ लगाकर रहेंगे। लेकिन ऑस्ट्रेलिया में बाहर से पेड़, बीज लाने के नियम बहुत सख्त हैं। फिर खतों का सिलसिला शुरू हुआ, कई देशों के कई विभागों के बीच। काफी मुश्किलों बाद 1966 में वे बीज ऑस्ट्रेलिया आ पाए। लेकिन अफसोस उनसे पेड़ नहीं उग सका।

ईकर्स के खत से साफ था कि यह काफी मुश्किल काम है। लेकिन हमने ठान लिया कि कोशिश तो करेंगे ही।

पुणे में न्यूटन का पेड़

इस प्रोजेक्ट के बारे में मैंने एक-दो फल विशेषज्ञों से बात की। उनका कहना था कि पुणे की आबोहवा में सेब का पेड़ ज़िन्दा नहीं रह सकता। लेकिन फिर भी गीता के अनुसार मैंने फल की इच्छा न रखते हुए कर्म करना तय किया। इंग्लैण्ड के ट्रिनिटी कॉलेज में पूछताछ करके हार्टिकल्चर ट्रस्ट (बीएचटी) से सम्पर्क किया। ट्रस्ट हमें उस पेड़ के वंशज की कलम भेजने पर राज़ी हो गया। उन्होंने कहा, "वैसे तो कलमें डाक से भी भिजवाई जा सकती हैं लेकिन अगर कोई आकर ले जाए तो बढ़िया होगा।" अब कौन कलमें ले आता?

1994 का साल शुरू हो गया था। और सुहानी फरवरी में सर फ्रेड हॉयल आयुका आने वाले थे। वे मेरे पी.एच.डी. के गाईड थे। मैंने डरते-डरते उनसे कलमें लाने के बारे में पूछा। उन्होंने बड़े उत्साह से कहा, "हाँ, हाँ क्यों नहीं।" और वे चार-पाँच कलमें ले भी आए। उन्हीं के हाथों से ये कलमें लगाई गईं। कुछ ही हफ्तों में उनमें नए पत्ते भी आ गए थे। पाँच में से दो पौधे ठीक-ठाक बढ़ रहे थे।

आगे चलकर उनमें सफेद फूल भी आ गए। यानी सेब का पेड़ पुणे में इतना तो जी ही सकता है – मैंने मन में कहा। लेकिन कुछ ही महीनों में सभी पौधे सूख गए। हिम्मत न हारते हुए इस बार हमने डाक से कलमें मँगवाईं। उन्हें दो हफ्तों में पहुँचना था। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। मुझे चिन्ता होने लगी। आखिरकार मुम्बई फॉरेन पोस्ट ऑफिस से चिट्ठी आई। उसकी लिखावट बड़ी मुश्किल से समझ आ रही थी। उसमें लिखा था – आपके पौधे हमारे यहाँ पड़े हैं। यह खत तीन हफ्ते पहले का था। डाक विभाग की खुद की चिट्ठी को मुम्बई से पुणे आने में 20 दिन लग गए थे!

गलती किसने कहाँ की, इस पर चर्चा करने से कोई फायदा नहीं था। पूरे महीने पोस्ट ऑफिस के अँधेरे में वो लि

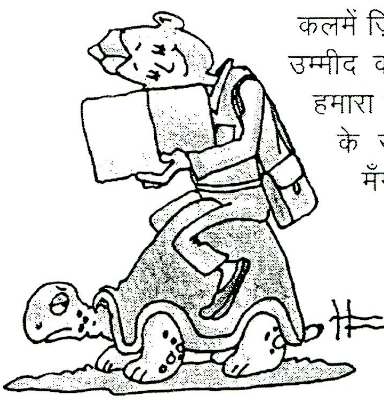

कलमें ज़िन्दा बची होंगी इसकी उम्मीद करना भी फिज़ूल था। हमारा बगीचा सम्भालने वालों के सुझाव पर वो पार्सल मँगवाया गया। कलमें अब तक सूखी टहनियाँ हो चुकी थीं। लेकिन मिट्टी को छूते ही उनमें हरे-हरे पत्ते आ गए। और एक पौधे में तो फूल भी! कुदरत जिसे बचाना चाहे उसे पोस्ट ऑफिस कैसे मार सकता है?

लेकिन इस बार भी हम फूलों से आगे नहीं जा सके। तब हमारे माली ने कहा, "हम वहाँ का पौधा यहाँ के पौधे पर ग्राफ्टिंग करके देखें?" मतलब देसी सेब के पेड़ पर न्यूटन के पेड़ की कलम लगाई जाए। बीएचटी ने भी इस प्रयोग में रुचि ली।

लेकिन इस बार बीएचटी ने बताया कि भारत में पौधा पहुँचाने के बारे में नियम और भी सख्त हो गए हैं। आपको कुछ कागज़ात हम तक पहुँचाने होंगे। उसके बाद ही हम पौधे भेज सकेंगे।

मैंने मुम्बई मंत्रालय में पूछताछ की। कुछ सरकारी दफ्तरों में फोन लगाए। तब पता लगा कि वे कागज़ात मिलना बहुत मुश्किल हैं। मैं हार मानने ही वाला था कि मुझे फिर से आशा की एक किरण दिखाई दी।

उस वक्त दिल्ली किसानी संस्था के संचालक विरेन्द्र लाल चोपड़ा थे। मैंने उनसे सम्पर्क किया। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया। और जाने कैसे वे अभिमन्यु की तरह दफ्तरशाही के चक्रव्यूह में घुसकर निकल आए। एक भली सुबह बीएचटी द्वारा भेजे पौधे मेरी टेबल पर थे। अब गेंद हमारे पाले में थी।

पेड़ों का खिलना

इस बार हमें सफलता मिल ही गई। ग्राफ्टिंग किए तीन पेड़ ज़िन्दा रहे। पुणे की सख्त गर्मी में (मार्च-मई) हमने उनके ऊपर छाता लगा दिया था। एक पेड़ न्यूटन के पीछे, एक आइन्स्टाइन की बगल में और एक आयुका की विज्ञानवाटिका में लगाया। न्यूटन के पीछे लगे पेड़ के ऊपर बरगद की छाँव होने की वजह से वह बहुत धीमे-धीमे बढ़ रहा था। जब कुछ समय तक हमने उस पर दिए की रोशनी डाली तो वह ठीक से बढ़ने लगा।

सबसे अच्छा फला-फूला आइन्स्टाईन की बगल का पेड़। 1996 से लगातार दस साल तक उसमें सेब लगे। उन सुर्ख लाल फलों के छोटे-छोटे टुकड़े चाय-कॉफी की पैन्ट्री में रखे जाते। ताकि आते-जाते लोग एकाध टुकड़ा मुँह में डाल लें! मैं मज़ाक में कहता था, "आइन्स्टाइन के पास का पेड़ सेहतमन्द है, इसका मतलब उसका गुरुत्वाकर्षण का नियम ज़्यादा परिपूर्ण है!"

कुछ प्रशंसा, कुछ टीका

न्यूटन का पेड़ भारत आया, पला-बढ़ा इसकी बड़ी प्रशंसा हुई। मीडिया, रेडियो, अखबार सभी ने खूब सराहा। पर यह सराहना अपने साथ टीका-टिप्पणियाँ भी लाई। जैसे पश्चिमी विज्ञान का प्रतीक भारत में लाकर नार्लीकर ने क्या हासिल किया? विज्ञान को ऐसे प्रतीकों की बैसाखी की ज़रूरत क्यों पड़ने लगी? आदि। यह सब करने के पीछे मेरी क्या भावना थी बताना चाहूँगा।

विज्ञान का खुद का इतिहास है। वैज्ञानिकों को नई-नई कल्पनाएँ सूझती हैं, साथ ही उनसे गलतियाँ भी होती हैं। खुद न्यूटन इन दोनों में माहिर थे। इसी तरह वैज्ञानिक जिन यंत्रों के माध्यम से खोज करते हैं उनका भी इतिहास में महत्व होता है। इसलिए उन्हें प्रयोगशाला में रखा जाता है। इससे एक प्रेरणा भी मिलती है। न्यूटन की इतनी महत्वपूर्ण खोज का सम्बन्ध इस पेड़ से जुड़ा है। इसीलिए उसके वंशज को बच्चों के सामने खड़ा करना मुमकिन हुआ। इस बात की मुझे खुशी है।

और अन्त में...

2001 को ये तीनों पेड़ किसी कीट की वजह से नष्ट हो गए। फिर भी जाने से पहले उन्होंने साबित कर दिया कि पुणे की आबोहवा में वे न केवल जी सकते हैं, फल-फूल भी सकते हैं। इंग्लैण्ड में 100-150 साल जीने वाले इन पेड़ों का जीवन यहाँ 10-15 साल ही क्यों है? उनकी उमर कैसे बढ़ाई जाए इन सवालों के जवाब ढूँढने की कोशिशें अब भी जारी हैं।

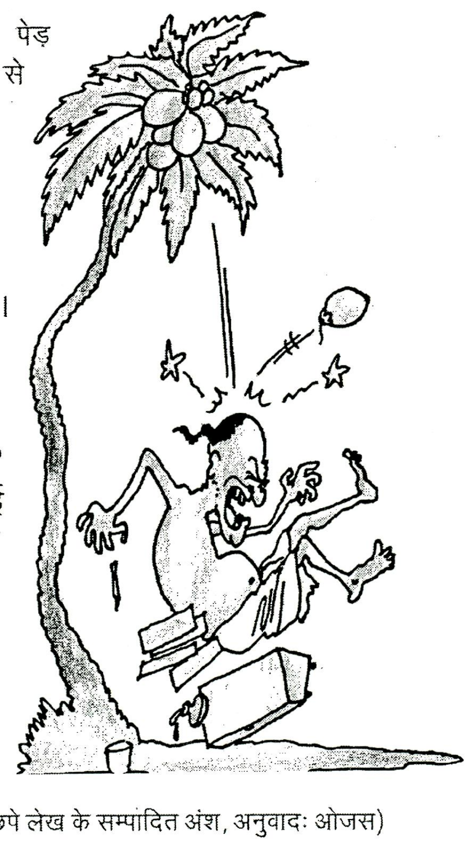

(*मराठी विज्ञान परिषद* में छपे लेख के सम्पादित अंश, अनुवादः ओजस)